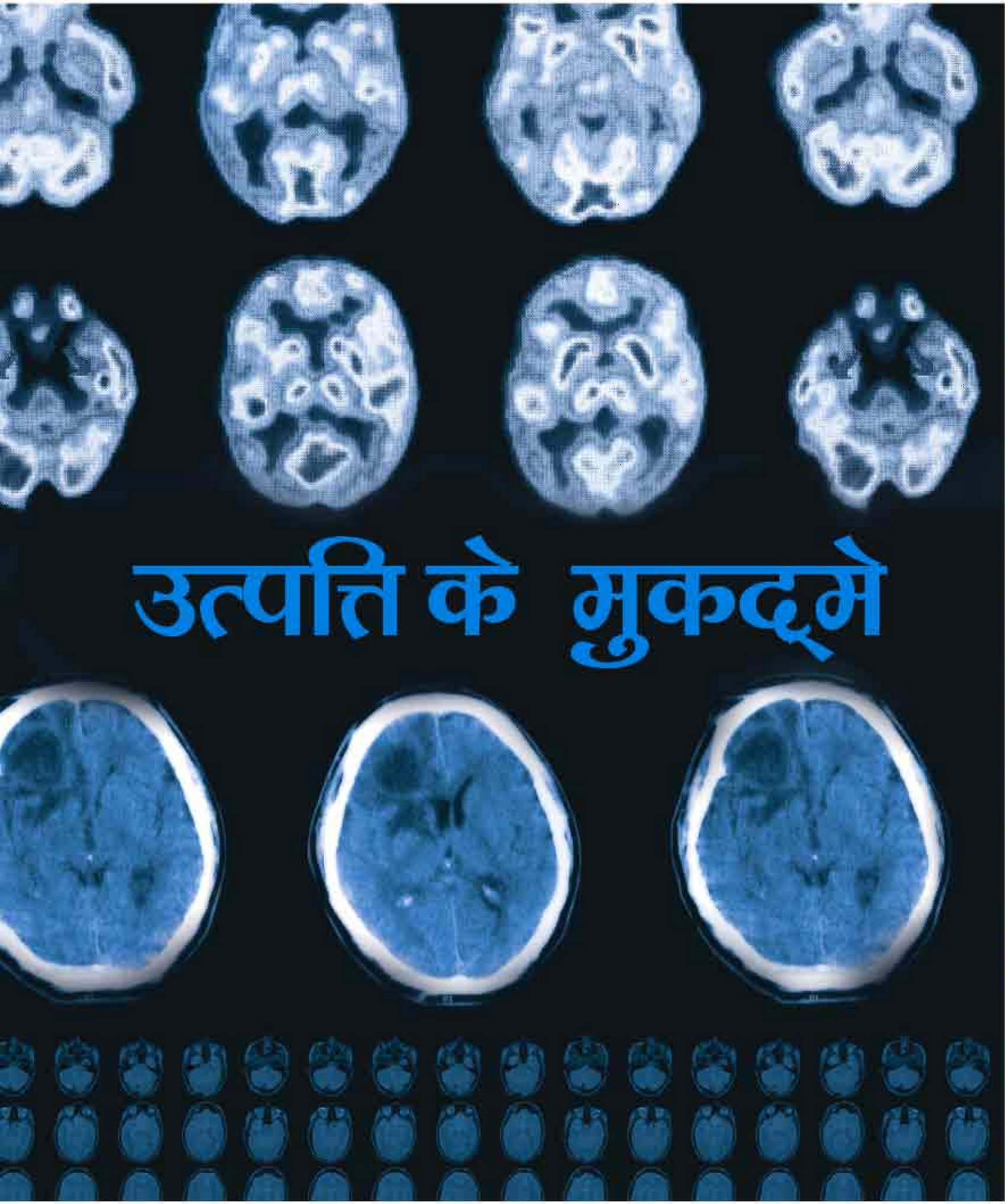

उत्पत्ति के मुकदमे

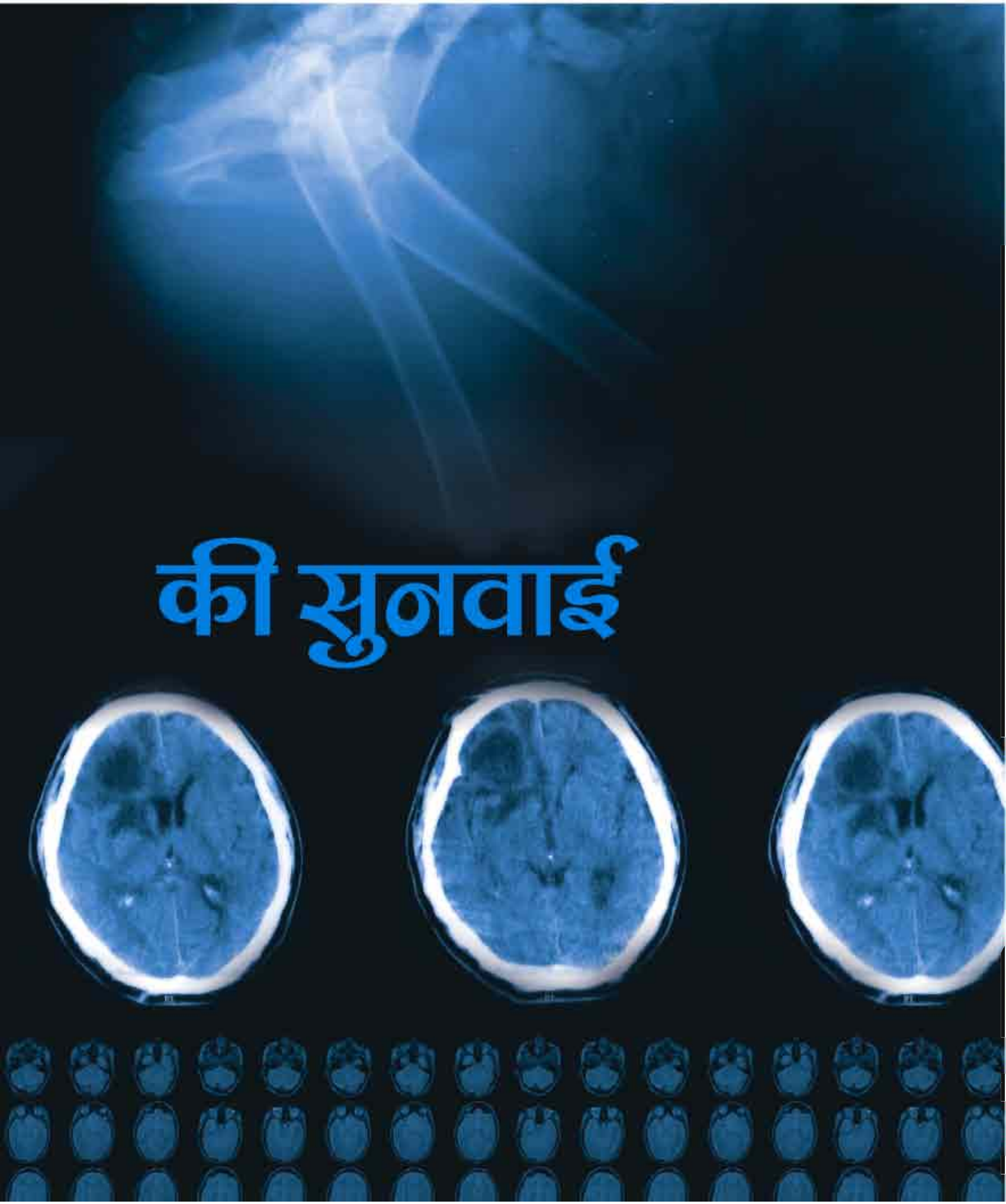

की सुनवाई

पहले बताए गए प्रमाण

डी एन ए परीक्षण ने अदालती कार्यवाही से जुड़े वैज्ञानिकों को उन अपराधिक मामलों को सुलझाने में मदद की है जिन्हें पहले सुलझाया नहीं जा सकता था। एक टी वी शो ने ऐसे मामलों को, ''कमज़ोर मामलों की फाइल'' घोषित कर दिया था। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार, डार्विन का सिद्धान्त भी 'एक कमज़ोर मुकद्मे की फाइल' जैसा ही है, जिसे अब सुलझाया जा सकता है। उनके द्वारा अपने सिद्धान्त को पेश करने के बाद अब लगभग 150 साल बाद, अति आधुनिक रूप से विकसित हो चुकी तकनीक उनके इस कमज़ोर मामले को सुलझाने के लिए हमें आवश्यक एवं पर्याप्त प्रमाण जुटा सकती है, ताकि यह तय किया जा सके कि डार्विन का कहना सही था या नहीं।

इस मामले पर लगाए जाने वाले सट्टे की क़ीमत बड़ी ज़्यादा है कि या तो हम अकस्मात् घटना का नतीजा हैं या कभी शुरुआत में हमें रचा गया था, इन दोनों बातों में क्या सच है, और क्या कोरी कल्पना है?

डार्विन ने अपने सिद्धान्त का आधार अनुभव, प्रयोगों एवं प्रेक्षणों से प्राप्त नतीजों के बजाय केवल निरीक्षण को ही बनाया था। हालांकि डार्विन ने तर्क देकर अपने सिद्धान्त के प्रति लोगों का विश्वास जीत तो लिया, और जिसे आखिरकार मान्य घोषित कर ही दिया गया, परन्तु दो पहलुओं को लेकर उन्हें स्वयं काफ़ी कड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ गया।

1. ''बहुत अधिक सिद्धता से काम करने वाले अंग'' जैसे आँख।

2. आश्चर्यजनक तौर से जीवाश्मों की ''लुप्त हो रही कड़ियों'' का गायब हो जाना।

बिना किसी आकृति या रूप-रेखा के आंख जैसा बहुत अधिक जटिल अंग विकसित कैसे हो गया? डार्विन इस तरह के अंगों जैसे कि आँख के विकास को समझाने का प्रयास करते हुए एक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि समय बीतने के साथ धीरे-धीरे ऐसे अंगों का विकास होता गया। तब भी, अपनी व्याख्या के बावजूद भी, वह अपनी इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए बेचैन हैं कि इस तरह के असाधारण रूप से जटिल उपकरण या प्रत्यंग जैसे कि आंख प्राकृतिक वरण के द्वारा धीरे-धीरे विकसित कैसे होते गए।

डार्विन इस मामले पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जिन बदलाव वाली नस्लों के जीवाश्मों के बारे में उन्होंने पहले जानकारी दी थी वे जीवाश्मों के अतीत के लेखे-जोखे में नहीं पाये गए। वे पुनः अपने विचार को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि अपने दावों को साबित करने के लिए उन्हें जीवाश्मों के जिन प्रमाणों की ज़रूरत है उनके बिना उनका सिद्धान्त शक के दायरे में आ सकता है:

''लेकिन जैसे कि इस सिद्धान्त के अनुसार बदलती हुई नस्लों के इन ढांचों की अनगिनत संख्या पायी जानी चाहिए, हमें जीवन की परतों की तह में जकड़ी हुई इनकी बेशुमार संख्या हम क्यों नहीं खोज पा रहे हैं?''

जैसे कि डार्विन केन्द्र का हमारा भ्रमण जारी है, आइए, हम कुछ प्रगतिशील वैज्ञानिकों को सुनें कि अणु-जैव विज्ञान और जीवाश्म-विज्ञान (पेलिओऑनटोलॉजी) की नवीनतम खोजों से प्राप्त प्रमाणों की रोशनी में डार्विन का सिद्धान्त कितनी मज़बूती से टिका रहता है।

जटिलता

डार्विन के काल में वैज्ञानिकों को इस बात की जानकारी नहीं थी कि प्राकृतिक शक्तियों (पृथ्वी, पानी, हवा और आग) के गहरे स्तर पर जीवन का प्रयोजन क्या है। कोशिका के साथ यह जो डी एन ए है इसकी संरचना के पीछे तथा जटिल अंगों जैसे आँख और मस्तिष्क की बनावट के पीछे क्या राज़ छुपा हुआ है?

और, इस बौद्धिक क्षमता और चेतना के बारे में क्या डार्विन के सिद्धान्त की व्याख्या के समान, कोई व्याख्या और भी है? हम इन प्रश्नों की जांच पड़ताल अपने इस भ्रमण में करेंगे।

साधारण रूप से जटिलता को हम बौद्धिक क्षमता से जोड़ देते हैं। जितनी जटिल किसी इमारत की बनावट, या मशीन की तकनीक होती है, उतना ही बुद्धिमान प्रतिभाशाली इंजीनियर का भी होना ज़रूरी है। जटिलता और बौद्धिक क्षमता, डार्विन के अनुसार प्राकृतिक प्रक्रियाओं का उत्पाद भर हैं। हालांकि, अणु विज्ञान की नवीनतम खोजों के प्रमाण हमारे सामने एक ऐसे संसार को पेश करते हैं जिसकी कल्पना भी डार्विन ने कभी नहीं की होगी।

मनुष्य का शरीर बहुत ख़ूबसूरत होता है, इसकी सुन्दरता की तारीफ़ की जाती है, इसको लाड़-प्यार दिया जाता है परन्तु थोड़ा बहुत ध्यान इसकी आश्चर्यजनक जटिलता पर भी दिया जाना चाहिए । मनुष्य के शरीर में जटिलता अपनी ऊंचाइयों पर पहुंच चुकी है। केवल मनुष्य के कान की ही बात करें तो इसमें इतने सर्किट होते हैं जितने कि किसी बड़े शहर की टेलीफोन-संचार की व्यवस्था में होते होंगे।

दूसरे शब्दों में, न्यूयॉर्क और लन्दन के हर घर में पायी जाने वाली हरेक टेलीफोन-लाइन के सभी पेचीदे कनेक्शनों (संयोजक तारों को जोड़ने) की संख्या लगभग उतनी ही होती है जितनी कि मनुष्य के केवल एक कान में संयोजक तन्तुओं की होती है। तब भी, जब तक कि हम अपनी सुनने की शक्ति खो नहीं देते हैं, उनके द्वारा हम जो कुछ सुनते हैं उसे सच मान लेते हैं।

मस्तिष्क

कान की हिलाकर रख देने वाली जटिलता के बावजूद भी उस मानव मस्तिष्क की तुलना में इसके सर्किट की संचार व्यवस्था की प्रणाली फीकी पड़ जाती है, जिसके अन्दर 12 अरब न्यूरॉन कोशिकाएं पाई जाती हैं जो 1000 लाख खरब संयोजक तन्तुओं को जोड़े रखती हैं ! ''इसका प्रत्येक पड़ाव इतनी क्षमता रखता है कि वह स्मरण शक्ति का एक अंग बना रहे। अतः मानव मस्तिष्क की स्मरण शक्ति की क्षमता निश्चित रूप से अनन्त (जिसका कोई अन्त न हो) होती है.....''।

1000 लाख खरब जैसी बड़ी संख्या को उदाहरण के रूप में हमारे सामने रखने के लिए अणु-जैव वैज्ञानिक डॉ. माइकल डेन्टन हमें पेड़ों वाले एक ऐसे घने जंगल का चित्र अपनी आंखों में उतारने की सलाह देते हैं जो पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका के आधे भाग को ढंक ले। यदि मान लिया जाए कि एक पेड़ में 100000 पत्तियां होंगी, तो उस पूरे जंगल में पत्तियों की जितनी संख्या होगी वह मानव मस्तिष्क में पाये जाने वाले संयोजक तन्तुओं की संख्या के बराबर होगी।

हालांकि, मस्तिष्क में जो संयोजन-प्रणाली (कनेक्शन) होते हैं वे राजमार्गों की व्यवस्था में पाये जाने वाले चौराहों के समान कार्य नहीं करते, परन्तु इसके बजाय वे एक ऐसा उच्च रूप से संगठित संचार तन्त्र का जाल होते हैं;

जो पृथ्वी नामक ग्रह पर पाये जाने वाले सारे दूर संचार तन्त्रों के जाल से कहीं अधिक जटिल होता है !

एक साधारण मनुष्य के मस्तिष्क में होते हैं :

दस अरब सर्किट

दस अरबों लाख खरब मैमोरी बिट्स (मैमोरी को मापने की इकाई)

2 करोड़ भिन्न-भिन्न किताबों को भर सकने के लिए पर्याप्त आंकड़े

कल्पना करें- तीन पौंड का यह भूरा पदार्थ 2 करोड़ पुस्तकों में समा सकने वाली जानकारी को अपने अन्दर समेटे रखता है !

स्टीफन हॉकिन्स मनुष्य के मस्तिष्क की जटिलता की तुलना आज के युग में पाये जाने वाले कम्प्यूटरों से करते हैं, और मस्तिष्क की ऐसी विलक्षण क्षमता का रहस्योद्घाटन हमारे सामने करते हैं जिसका कोई मुकाबला नहीं है।

एक ही सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट से जितने ज़्यादा कम्प्यूटरों को जोड़ा जा सकता है, उसकी तुलना में, मस्तिष्क में लाखों प्रोसेसिंग यूनिट होती हैं ...एक ही समय में समान रूप से सभी कार्य करती रहती हैं !

इस बात की कल्पना करना भी बड़ा मुश्किल काम है कि हज़ारों कम्प्यूटर एक-साथ काम कर रहे हों, लेकिन मानव मस्तिष्क की रचना इस ताल-मेल के साथ की गई है जैसे कि लाखों कम्प्यूटर एक ही मेल-जोल के साथ जुड़े हुए हों। ऐसा लगता है कि मानव-मस्तिष्क एक ऐसी संगीत रचना है जिसे सारे कम्प्यूटर एक साथ मिलकर एक बड़े संगीत समारोह में गा रहे हों ! और जब हम अपनी सृष्टि की ओर नज़र उठाकर देखते हैं, तो दूर-दूर तक हमें ऐसी दूसरी कोई वस्तु नज़र नहीं आती जो मानव मस्तिष्क की जटिलता के मुकाबले किंचित भी ठहर सके।

यहां तक कि दूर संचार के इंजीनियर भी कोई ऐसी बेहतरीन तकनीक जो मनुष्य की जानकारी में हो, इस्तेमाल करके अपनी इंजीनयरिंग में उपयोग में लाएं, तो कल-पुर्ज़े जोड़कर वे जो भी कोई ऐसी वस्तु बनाएंगे जो इस तीन पौण्ड के बेढंगे से भूरे रंग के पदार्थ, जिसे मानव मस्तिष्क के नाम से जाना जाता है, से ज़रा सा भी मेल खाती हो, तो ऐसी वस्तु बनाने में उन्हें अनन्त काल का समय लगेगा .... और तब भी उन्हें समझ नहीं आ पाएगा कि वे इसे बनाने की शुरुआत कहां से करें।

हमारी चेतना का रहस्य

हमारे होशो-हवास या चेतना का केन्द्र बिन्दु और ''कल्पनाओं व विचारों के नट और बोल्ट .....कौंधते हुए विचारों का दिमाग में आना और दूसरे अंगों तक उन्हें पहुंचाना ....यह सब घटित होता है ..... मस्तिष्क के बाहरी भाग में आगे की ओर उभरे हुए हिस्से में जिसे प्रीफ्रन्टल कोरटेक्स कहते हैं''। मनुष्यों में इस उभरे हुए बाहरी भाग का क्षेत्रफल, जानवरों में पाये जाने वाले मस्तिष्क के बाहरी भाग (सेरिबरल कोरटेक्स) के अनुपात में कहीं ज़्यादा बड़ा होता है। ''यद्यपि मनुष्य के मस्तिष्क में पाये जाने वाले गूदे तथा चिम्पैंजी में पाये जाने वाले गूदे में 1 प्रतिशत से भी कम का अन्तर गणना के अनुसार होता है, तब भी हमारे मस्तिष्क के बाहरी भाग में दस गुने ज़्यादा न्यूरॉन होते हैं''।

अगर हमारा आकार सिकुड़ कर इतना छोटा हो जाए कि हम मस्तिष्क के बाहरी भाग (सेरिबरल कोरटेक्स) के सबसे अन्दर वाले हिस्से में चल रही आश्चर्यजनक हरकतों को दर्शक के समान देख सकें, तो हमें सभी दिशाओं में अपने जाल फैलाती हुई पटाखों का आतिशबाज़ी का नज़ारा दिखाने के लिए एक कैलाईडोस्कोप (एक प्रकाशिक यन्त्र जिसमें रंग-बिरंगी आकृतियां दिखायी पड़ती हैं) जैसी वस्तु नज़र आएगी। आइये कल्पना करें, कि हम मस्तिष्क के बाहरी भाग (सेरिबरल कोरटेक्स) को इसकी नींद से जगाकर देखने जा रहे हैं।

(मस्तिष्क का बाहरी भाग) अब चिंगारियों का एक ऐसा मैदान सा नज़र आने लगा है जहां चिंगारियां एक ही लय में चिंगारियों का प्रकाश उगल रहीं हैं और चिंगारियां किसी रेलगाड़ी के समान तेज़ी-तेज़ी इधर से उधर, उधर से इधर गति कर रही हैं। मस्तिष्क जाग उठा है और इसके साथ ही मस्तिष्क के विचार अपनी पुरानी दशा में वापस लौटने लगे हैं। यह सब कुछ ऐसा लग रहा है मानो जैसे कोई आकाश गंगा सृष्टि का कोई ख़ास नृत्य शुरू करने जा रही हो।

बड़ी ही तेज़ी के साथ (मस्तिष्क का बाहरी भाग) एक जादुई करघे या कपड़ा बुनने की मशीन बन जाता है जहां मशीन में धागे को ऊपर नीचे

करने वाले लाखों जगमगाते हुए यन्त्र शटल के समान ऐसी संरचनाएं दिखाई देने लगती हैं जो ऐसे लगता है कि तेज़ी से बनने-बिगड़ने वाली किसी डिज़ाइन या नमूने को बुन रही हों और हमेशा यह नमूना भले ही टिकाऊ न हो, बनते और बिगड़ते जा रहे हों परन्तु यह नमूने महत्वपूर्ण नज़र आ रहे हैं; छोटे-छोटे नमूनों के बनने-बिगड़ने का सिलसिला चल रहा है।

और जैसे ही जाग चुका शरीर उठ खड़ा होता है, इस शानदार प्रक्रिया से उत्पन्न हुए छोटे-बड़े नमूने खिंच कर सिकुड़ने लगते हैं जब तक कि वे मस्तिष्क के निचले हिस्से में जाने के लिए पटरियों को तैयार नहीं कर लेते। इधर-उधर गति करने वाली और चकाचौंध कर देने वाली चिंगारियों के तार एक सिरे में मिलकर इन पटरियों को जोड़ने लगते हैं। इसका मतलब है कि शरीर उठ खड़ा है और अपनी जागृत अवस्था में वापस आकर अपने दैनिक कामों को करने के लिए तैयार है।

सेरिबरल कोरटेक्स (मस्तिष्क का बाहरी भाग) हमारे मस्तिष्क वह हिस्सा होता है जहाँ ''द्रव या पदार्थ चेतना में अपनी शक्ल को बदलता है''। ''हालांकि यह एक बहुत छोटी सी बात या घटना सी लगती है कि इस तरह एक व्यक्ति का चेतना में आना क्षणिक महत्व रखता है लेकिन आखिरकार यह इन दो बातों में तो कम से कम अन्तर बताता ही है कि होना .....एक निष्क्रिय सी यंत्र के समान काम करने वाली दशा की है ....और करना इच्छाओं से भरे प्राणी की ओर संकेत करता है''।

शतरंज के महान् खिलाड़ी गैरी कास्पारोव जिन्हें ग्रैंडमास्टर के ख़िताब से नवाज़ा गया है, हैरान-परेशान से बैठे हुए थे .....उन्होंने अपना माथा अपने दोनों से पकड़ा हुआ था, कारण था कि वे विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि क्या हो गया! वजह थी, कि शतरंज के खेल का एक महान् प्रतीक समझे जाने वाले इस शख्स को आई बी एम द्वारा निर्मित सुपर कम्प्यूटर डीप बल्यू से अभी कुछ देर पहले ही मात खानी पड़ गयी थी। तब भी यह डीप डबल्यू अपनी जीत पर अपनी खुशी का इज़हार नहीं कर पा रहा था .....इसे महसूस ही नहीं हुआ कि इसने ग्रैंडमास्टर पर जीत हासिल कर ली है। क्योंकि इसके अन्दर उस गुण की कमी थी जिसे हम महत्व देते हैं .....चेतना यानि होशो- हवास .....एक ऐसा रहस्य जो सदियों से वैज्ञानिकों के लिए परेशानी का कारण रहा है।

हमारे मस्तिष्क और मानव द्वारा निर्मित कम्प्यूटरों में सबसे महत्वपूर्ण अन्तर हमारी चेतना शक्ति का रहस्य है। एक अति प्रसिद्ध पत्रिका नेचर के भूतपूर्व प्रमुख सम्पादक सर जॉन मैडोक्स चेतना की इस रहस्यमय पहेली पर अपने विचार साइन्टिफिक अमेरिकन में पेश करते हुए कहते हैं :

''कोई नहीं जानता कि फैसले कैसे लिए जाते हैं और कल्पनाओं के संसार से कैसे बाहर निकला जाता है। चेतना में क्या समाया हुआ है, और जो कुछ इसमें है उसे कैसे परिभाषित किया जाए, यह बिल्कुल एक पहेली बूझने के समान है ..... ऐसा लगता है कि हम विचार शीलता एवं मनन की प्रक्रिया को समझ पाने में आज भी उतना ही पिछड़े हुए हैं जितना कि एक शताब्दी पहले थे''।

दरअसल चेतना के सम्बन्ध में तो निश्चित तौर पर डार्विन द्वारा कोई व्याख्या दी ही नहीं गयी है । डार्विन की विचार धारा पर चलने वाले प्रगतिशील वैज्ञानिक रिचर्ड डॉकिन्स, उस उलझन को जिसका सामना विकासवादियों को चेतना के रहस्य के उजागर होने से करना पड़ रहा है, स्वीकारते हुए कहते हैं :

''ऐसा मेरे ही साथ मेरे ही समय में क्यों हुआ, कि आधुनिक जीव विज्ञान को सबसे ज़्यादा उलझे हुए रहस्य का सामना करना पड़ रहा है''।

हालांकि जबकि हमारी चेतना नींद के दौरान विश्राम कर रही होती है, मस्तिष्क अपना काम करता रहता है।

''यहाँ तक कि सोते समय भी, मस्तिष्क जीवन से जुड़े जटिल कामों- सपने देखने, अतीत को याद करने, कल्पनाओं से भरे चित्रों को यादों में उतारने जैसे कामों के लिए कम्पन करता रहता है, जीवन की उमंगों में तैरता रहता है और विचारों को रोशनी से चकाचौंध रहता है। हमारे विचार, क्षणिक चित्रों का आना-जाना, कल्पनाओं में खोये रहना यह सब हमारे शरीर से जुड़ी सच्चाइयां हैं''।

हालांकि मस्तिष्क से जुड़ी जटिल प्रक्रियाएं डार्विन के विकास सम्बन्धी सिद्धान्त को ग़लत साबित नहीं करतीं, बल्कि यह विकासवादियों की कल्पनाओं को उनकी सीमा में क़ैद रखती हैं।

मानव कैमरा

शायद मस्तिष्क का सबसे अद्‌भुत काम सोचने की अपेक्षा कल्पना करना या सपने देखना है, जिसके लिए सैकड़ों छोटे-छोटे यन्त्रों समान अंग एक साथ मिलकर आश्चर्यजनक शुद्धता के साथ काम को अंजाम देते हैं। परन्तु आंख देखती कैसे है ? और इसे इसकी यह बनावट कहां से मिली ? अथवा क्या यह सामान्य रूप से किसी अनदेखी प्राकृतिक घटनाओं का परिणाम है ?

''आंख कैमरे के समान काम करती है, लेकिन यह किसी भी ऐसी मशीन से जिसकी कल्पना की जा सके, ज़्यादा आसान है''।

हरेक मानव नेत्र में .....

छड़ के समान 1 अरब तन्तु होते हैं।

15 लाख एक के बाद एक मिलने वाले सन्देशों को एक साथ नियंत्रित करता है।

प्रतिदिन 100,000 बार इधर से उधर घूमता है।

अपने आप फोकस करने की स्वचालित व्यवस्था होती है,

में 60 लाख शंकु होते हैं।

70 लाख रंगों में अन्तर कर सकता है।

आंख की देखने की क्षमता भली भांति काम करती रहे इसके लिए, यह सारे अंग ..... एवं और भी बहुत सारे अंग, बहुत ज़रूरी है कि काम को एक साथ मिलकर करते रहें।

डार्विन की चुनौती

डार्विन जानते थे कि अगर उनका सम्पूर्ण जैव विकास का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ मैक्रोइवॉल्यूशन) सत्य है तो, इस सिद्धान्त के द्वारा जटिल अंगों जैसे आंख के क्रमिक विकास की व्याख्या ज़रूर सम्भव होनी चाहिए। अपनी अनुपम कृति 'ओरिजन ऑफ स्पीसीज़' में, उन्होंने लिखा था,

''अगर व्यवहारिक रूप से प्रदर्शन करके यह साबित किया जा सके कि कोई भी ऐसा जटिल अंग जो निश्चित तौर पर लगातार हो रहे, अनेकानेक हल्के-फुल्के बदलावों की वजह से ही मात्र अपने अस्तित्व को बरकरार नहीं रख सका है, बल्कि इसकी और भी वजह है तो निश्चित रूप से मेरा सिद्धान्त बेकार साबित हो जाएगा .....''।

आंख डार्विन के सामने दो परेशानी से भरी चुनौतियां रखती है -

1. पहली, वे केवल यही अनुमान लगा सके कि किस प्रकार प्राकृतिक स्त्रोत के द्वारा पहली आंख का विकास हुआ। इस सम्बन्ध में वे दलील देते हुए कहते हैं :

''कैसे एक तन्त्रिका प्रकाश के प्रति सम्वेदनशील हो गई, यह बात हमारे लिए ज़्यादा महत्व नहीं रखती बल्कि जीवन की उत्पत्ति अपने आप कैसे हो गई, यह हमारे लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण है''।

डार्विन का सबसे बेहतरीन अन्दाज़ा यह रहा कि प्रकाश के प्रति सम्वेदनशील होने वाली इस तन्त्रिका ने प्राणी को एक विकासकारी लाभ यह पहुंचाया कि अन्ततः यह बाद में अपने कई काम करने वाले हिस्सों के साथ एक आंख के रूप में विकसित हो गयी।

2. दूसरी, डार्विन इस प्रश्न को लेकर परेशान थे कि आंख के बाकी विभिन्न भाग धीरे-धीरे कैसे विकसित हो गए। वे इस बारे में टिप्पणी करते हुए कहते हैं:

''मान लिया जाए कि आंख..... जिसके बारे में ऐसा लगता है कि प्राकृतिक वरण के द्वारा उत्पन्न हुई होगी तो, मैं खुले दिल से इस बात को स्वीकारता हूं कि, इसका इतना ज़्यादा सम्वेदनशील हो जाना बहुत बेतुकी बात है''।

ओरिजन.... में, डार्विन अपने सिद्धान्त का वर्णन करते हुए बताते हैं कि प्राकृतिक वरण के दौरान किस प्रकार कुछ ख़ास अंग जैसे कि आंख थोड़े ही चरणों की प्रक्रिया में विकसित होते चले गए। जबकि यदि आंख की जटिलता की बात की जाए तो इसकी जटिलता किन विभिन्न स्तरों पर पहुंच चुकी है इसके बारे में अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, तब भी विकास वादी विचारधारा के लोग इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि मनुष्य का जटिल अंग आंख प्राकृतिक वरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। ये प्रकृतिवादी केवल इसी बात में विश्वास करते हैं कि आंख केवल बनावट का नमूना पेश करने का दिखावा मात्र है।

कुछ भी हो, अभी हाल ही में जीव रसायन शास्त्रियों ने आंख की जैव-रासायनिक प्रक्रिया का खुलासा करके इसकी हैरतअंगेज़ जटिलता को उजागर किया है, जिसके अनुसार लाखों प्रकाशिक तन्त्रिकाएं मस्तिष्क के प्रतिबिम्ब बनाने वाले भाग में जैव-वैद्युत संकेतों को पहुंचाने का काम करती हैं।

डार्विन के समय में वैज्ञानिकों के पास इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं थे कि वास्तव में देखने की क्षमता आणविक स्तर पर कैसे काम करती है। ली हाई विश्वविद्यालय में जैव-रसायन के प्रोफेसर माइकल बीही, जैव रसायनिकी की जटिल प्रक्रियाओं को समझने की उन्नीसवीं शताब्दी के लोगों की क्षमता की तुलना हवाई ज़हाज़ों में लगाए गए उपकरण ''ब्लैक बॉक्स'' से करते हैं। बीही टिप्पणी करते हुए कहते हैं :

''अब काले बक्से के देखने की क्षमता उत्पन्न हो गई है, विकासवादी विचारधारा के लोगों के लिए इसका वर्णन करना कोई बड़ी बात नहीं रह गई है.... हर एक ....चरण और संरचनाएं जिनके बारे में डार्विन की कल्पना थी कि वे बहुत साधारण हैं दरअसल वे ऐसी जटिल और हैरतअंगेज़ जैव रासायनिक प्रक्रियाओं से होकर गुज़रते हैं जिनको अलंकारिक भाषा और शब्दों का इस्तेमाल करके कागज़ पर उतारा भी नहीं जा सकता है''।

(आंख की जैव रासायनिक प्रक्रिया कैसे काम करती है इसे जानने के लिए पढ़ें डार्विन्स ब्लैक बॉक्स।)

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है : धीरे-धीरे आंख का विकास होता कैसे गया ? हालांकि विकासवादी विचारधारा के मानने वालों का मत है कि आंख की अद्‌भुत जटिलताओं का निर्माण करने में प्राकृतिक वरण बेहतरीन क्षमता रखता है, जीवाश्मों के लेखे-जोखे के इतिहास में इस बात का प्रमाण पाया गया है कि कैम्बरिअन काल के दौरान बड़ी तेज़ी के साथ आंख का विकास होता चला गया। तब भी, ''धीरे-धीरे होने के बिना..... हम एक आश्चर्यकर्म की ओर अपना रुख कर चुके हैं,'' अपने विचार रखते हुए प्रमुख विकासवादी रिचर्ड डॉकिन्स कहते हैं।

डार्विन आंख को लेकर परेशान होते चले गए, वे अपने एक मित्र से इस बात को स्वीकारते हुए कहते हैं,

''इन दिनों आंख मेरे अन्दर एक ठण्डी सिहरन वाला डर पैदा कर रही है''।

आण्विक प्रक्रिया

जैव-रसायन शास्त्री माइकल बीही का अनुमान है कि शरीर में कुछ ऐसे ख़ास तन्त्र होते हैं जो तब तक काम नहीं कर पाते हैं जब तक कि उनके सारे छोटे-छोटे अंग पूरी तरह विकसित न हों, यह एक ऐसी घटना है जिसे वह 'सरल न हो सकने वाली जटिलता' का नाम देते हैं।

सरल न हो सकने वाली जटिलता के एक बेजान उदाहरण के तौर पर बीही सामान्य तौर पर उपयोग में लायी जाने वाली चूहेदानी का उदाहरण देते हैं। चूहेदानी के पांच मुख्य पुर्ज़े ऐसे होते हैं जिनका चूहों को पकड़ने के लिए एक साथ काम करना बहुत ज़रूरी है। अगर एक भी पुर्ज़ा काम नहीं कर पाएगा तो चूहे सुरक्षित हो जाएंगे, अतः वह चूहेदानी जिसको बनाने में थोड़े बहुत पुर्ज़े लगाए गए हैं बेकार साबित होगी।

सरल न हो सकने वाले जटिल तन्त्र के सजीव उदाहरण के तौर पर वह सूक्ष्मदर्शी से देखे जाने वाले बैक्टीरियल फ्लैगीलम का उदाहरण देते हैं, जो अपने शरीर को आगे बढ़ाने के लिए एक धागे जैसी संरचना का इस्तेमाल करता है जो ठीक ऐसे कार्य करती है जैसे घूमने वाली मोटर। फ्लैगीलम एक ऐसा तन्त्र होता है जो तैरने के लिए प्रयोग किया जाता है और जो काफी हद तक रोटेटरी प्रॉपेलर (घूमने वाली मोटर को गति देने वाला पंखा- ऐम्पलर) के समान कार्य करता है, जो मोटर की कार्य प्रणाली को अन्य पुर्ज़ों के साथ मिलकर आगे बढ़ाता है :

अम्लीय शक्ति से घूमने वाला इंजन की कार्यप्रणाली में जुड़े पुर्ज़ों की रूपरेखा का उदाहरण :

स्टेटर

ओ-रिंग्स

बुशिंग्स्

ड्राइव शाफ्ट

काम करने के लिए, इस आण्विक मोटर को 50 प्रोटीन की आवश्यकता होती है जो एक साथ मिलकर काम कर सकें। इनमें से एक प्रोटीन की भी कमी का परिणाम यह होता है कि मोटर की कार्यप्रणाली में पूरी तरह से गिरावट आ जाती है, और यह बेकार हो जाती है और काम नहीं कर पाती। कुछ कम पुर्ज़े लगाकर बनायी गई चूहेदानी के समान यह भी बेकार साबित हो जाएगी।

बीही के अनुसार, वैज्ञानिकों का समुदाय सरल न हो सकने वाली जटिल संरचनाओं की कार्यविधि का कारण जान पाने में अयोग्य साबित हो चुका है :

''आण्विक विकास की क्रिया वैज्ञानिक प्रमाणों से मिले सूत्रों पर आधारित नहीं है। विज्ञान के साहित्य में इसको कभी प्रकाशित नहीं किया गया है-प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में, विशेष वर्ग की पत्रिकाओं में या किताबों में-जो इस बात को बताती हैं कि किस प्रकार वास्तविक, जटिल, जैव रासायनिक तन्त्र में आण्विक विकास होता है या ऐसी किताबें, पत्रिकाएं या तो थीं या रही भी होंगी''।

हालांकि विकासवादी विचार धारा को मानने वाले ऐसे बहुत से विकासवादी बनावट के प्रमाण के रूप में जटिल संरचनाओं के निवाले को खाने के लिए तैयार बैठे हैं, न ही उनके पास ऐसी कोई भी वैज्ञानिक व्याख्याएं हैं जो अभी भी प्रकाशित की गयी हों कि कैसे धीरे-धीरे हो रहे बदलाव सरल न हो सकने वाली जटिल संरचनाओं को निर्मित कर सकते हैं।

हमारे गाइड अभी हमको आश्वासन दे रहे हैं कि जो कुछ भी अभी हमारे सामने से गुज़रा है उन सारी जटिल संरचनाओं के बारे में बताने में डार्विन का सिद्धान्त सक्षम है। डार्विन के अनुसार, समय और किस्मत या आकस्मिक घटनाएं दोनों मिलकर किसी भी चीज़ को प्रायोगिक तौर पर पूरा कर सकते हैं और इन चीज़ों में डी एन ए जैसी जटिल संरचना, आंख और मनुष्य के मस्तिष्क की हैरतअंगेज़ बौद्धिक क्षमता भी शामिल हैं।

जीवाश्मों से मिले प्रमाण

हमारा डार्विन के केन्द्र का यह भ्रमण अब अपना रुख़ जीवाश्मों की ओर कर रहा है जहां हम जानेंगे कि विश्व के प्रमुख जीवाश्म वैज्ञानिक डार्विन द्वारा पहले बतायी गई ''लुप्त हो चुकी संयोजी कड़ियों'' के प्रमाणों का रहस्योद्घाटन कैसे कर रहे हैं, लेकिन, पहले हम उन ख़ास जीवाश्मों के बारे में चर्चा कर लें जिन्हें हम अपनी 'कमज़ोर मुकद्मे वाली फाइल' में ढूंढ रहे हैं।

हम सम्पूर्ण जैव विकास से सम्बन्धित उन उदाहरणों का भली-भांति अध्ययन कर चुके हैं जो बताते हैं कि प्रजातियों में विभिन्नताएं पायी गईं परन्तु हमें ऐसे कोई भी प्रमाण देखने को नहीं मिले हैं जिनका परीक्षण किया गया हो और जो सम्पूर्ण जैव विकास से जुड़े डार्विन के दावों को साबित करने में सहायता प्रदान करते हों .... कि प्रजातियां यकायक दूसरी प्रजातियों में तब्दील हो गईं। तब भी, यदि उन नस्लों की हड्डियां खोज ली जाएं जिनमें बदलाव हुए तो, डार्विन सही साबित हो जाएंगे। हमारा यह कमज़ोर मुकद्मा हड्डियों .....या क्या बदलाव हुए, इसकी खोज पर आकर ठहर जाता है।

हमारी जाँच-पड़ताल के लिए हड्डियों का मिल पाना एक रोमांचक घटना होगी, यह कारण हमें इसलिए दबाव में ले रहा है क्योंकि वर्तमान में ऐसे कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं कि आज भी सम्पूर्ण जैव विकास की प्रक्रिया जारी भी है अथवा नहीं। दरअसल, स्टीवेन स्टेनली अपनी पुस्तक माइक्रोइवॉल्यूशन में जो कि जीवाश्मों के प्रमाणों से परे हटकर है, इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि :

''हमें तो हैरान होना चाहिए कि हर स्थिति में विकास का यह सिद्धान्त एक बेबुनियादी परिकल्पना से ज़्यादा कुछ होने की क्षमता नहीं रखता''।

150 साल तक अपने विश्व-भ्रमण की यात्रा के दौरान जीवाश्म वैज्ञानिक इन बदलती हुई नस्लों के जीवाश्मों की खोज करने में काम करने में, खुदाई करने में, वर्गीकरण करने में व्यस्त रहे हैं। उन्होंने क्या खोज की है ? और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, क्या जीवाश्मों से मिले प्रमाण डार्विन के सम्पूर्ण जैव विकास के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं ?

ओरिजन ऑफ स्पीसीज़ में डार्विन यह दावा करते हैं कि जीवाश्मों के लेखे-जोखे में ''लुप्त हो चुकी संयोजी कड़ियों '' वाले जीवाश्मों की भरमार होनी चाहिए। परन्तु, उनकी उपस्थिति न पाकर वे बहुत परेशान हो गए और बड़ी अनिच्छा से वे बात मान लेते हैं कि,

''उनकी संख्या.....हक़ीकत में अवश्य ही बहुत ज़्यादा होनी चाहिए। तब भूगर्भ विज्ञान से मिलने वाली हरेक आकृति में और चट्टान से मिलने वाली हरेक पर्त में इस तरह की संयोजी कड़ियां भरपूर मात्रा में क्यों नहीं हैं ?''

हम जीवाश्मों की खोज का अपना यह काम रहस्यमयी कैम्ब्रायन काल से प्रारम्भ करते हैं, यह वह युग है, जिसके समय काल की गणना भूगर्भ शास्त्री आज से 54 करोड़ वर्ष पूर्व करते हैं।

यकायक प्रकट होने की घटना

कैम्ब्रायन काल की खोज से पहले, केवल साधारण एवं सरल शक्ल वाले जीवनों की खोज की गई थी। परन्तु, यकायक, जीवाश्मों के लेखे-जोखे में आज पाए जाने वाले जीवन से भी ज़्यादा जटिल जीवन की भरमार पायी जाने लगती है, जिनमें से कुछ के तो आंखें भी हैं।

सामान्य तौर पर अचानक हो जाने वाले इस तरह के विकास के बारे में डार्विन का सिद्धान्त कोई वर्णन नहीं करता है, विशेष रूप से कुछ ऐसे

अंगों में जो आंख के समान जटिल हैं, जो कि सम्पूर्ण बनावट के साथ यकायक प्रकट हो जाए। डॉ. फिलिप जॉन्सन एक प्रश्न करते हैं :

''यह सभी प्राणी जटिल बहुकोशकीय संरचना वाले जीवित प्राणी हैं और इनके अनुकूलन की क्रिया बहुत जटिल है जैसे कि दस लाखों खरब पैनी आंखें। यह जटिल नाक- नक्श इनमें उत्पन्न कहां से हुए ?''

डार्विन इस मत पर कि प्रजातियां कभी भी यकायक अपने आप उत्पन्न नहीं हो सकतीं, अपने सभी सिद्धान्तों को दांव पर लगाने को तैयार बैठे हैं।

''अगर बहुत भारी संख्या में प्रजातियां, जो एक ही .... कुल से सम्बन्ध रखती हैं, उनमें वास्तव में अचानक से ही जीवन उत्पन्न हो गया है, तो प्राकृतिक वरण द्वारा जीवन की उत्पत्ति के सिद्धान्त का तथ्य अपनी किस्मत को रोएगा'' - चार्ल्स डार्विन।

विश्व के प्रमुख जीवाश्म वैज्ञानिकों में से एक वैज्ञानिक के कैम्ब्रायन काल के मिले जीवाश्मों के ऊपर कुछ टिप्पणियां सुनने के लिए एक कुछ देर के लिए अपने भ्रमण को स्थगित करते हैं। डॉ. टी.एस. कैम्प जो ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री में प्राणि जगत के संग्रह के संग्रहालय अध्यक्ष हैं, यह घोषणा करते हैं :

''कुछेक अपवादों को छोड़कर, ऐसा पहली बार हुआ कि बिल्कुल नये किस्म के प्राणी जीवाश्मों में पाये गए जो पूरी तरह विकसित थे..... और इसकी तो कभी बिल्कुल आशा भी नहीं की गई थी''।

जब डार्विन ने काफी लम्बे समय के साथ धीरे-धीरे न समझ में आने वाले बदलाव की बात कही थी तो निश्चित रूप से आंखों के तेज़ी के साथ विकसित होने की बात डार्विन के दिमाग में नहीं आयी होगी । लेकिन, क्या यह सिर्फ़ कैम्ब्रायन युग था जिसने डार्विन के सम्पूर्ण जैव विकास के सिद्धान्त को भयभीत कर दिया ? आइए, हम इसको एक दूसरे पहलू से देखें- जीवाश्मों के लेखे-जोखे का सम्पूर्ण इतिहास।

वर्तमान स्थिति

आज के समय में जीवाश्मों का आंकड़ा अरबों जीवाश्मों के ज़बरदस्त प्रमाणों वाले दस्तावेज़ों से भरा पड़ा है। स्वयं ब्रिटिश संग्रहालय में अरब जीवाश्म मौजूद हैं । हालांकि जीवाश्म वैज्ञानिकों ने कुछेक जीवाश्म ऐसे खोज निकाले हैं जिनके बारे में उनका दावा है कि उनकी नस्लों में बदलाव आता गया था, जैसे कि आर्कियोप्टेरिक्स के बारे में जो कुछ जीवाश्मों के लेखे-जोखे में हैं उससे बहुत ज़्यादा निराशा ही हाथ लगी है। यहां तक कि आर्कियोप्टेरिक्स की नस्लों में बदलाव का मामला काफ़ी विवादपूर्ण रहा है। आण्विक जीव-विज्ञान शास्त्री माइकल डेन्टन का इस बारे में कहना है :

''जैसा कि आर्कियोप्टेरिक्स के बारे में पता चला, कि हालांकि इसमें कुछ रेंगने वाले प्राणियों की विशेषताएं पायी गई थीं, फिर भी इसके पंखों में उड़ने वाले कुछ साधारण पर भी पाये गए जिससे कि लगता है कि इसमें आज कल पाये जाने वाले कबूतरों और कौवों के समान उड़ान भरने की क्षमता रही होगी ..... संभवतः आर्कियोप्टेरिक्स बीच के वर्ग का वह सबसे श्रेष्ठ प्राणी रहा होगा जिसको नाम देने में डार्विन समर्थ थे, तब भी रेंगने वाले प्राणियों और आर्कियोप्टेरिक्स के बीच प्रायः काफ़ी अन्तर पाया गया''।

जीवाश्मों के लेखे-जोखे से क्या झलक मिलती है, जीवाश्म वैज्ञानिकों के अनुसार, अधिकतर प्रजातियों में व्यवहारिक परिवर्तन नहीं होता और वे जैसी थीं या हैं वैसी ही लाखों सालों तक बनी रहती हैं। और वे इस घटना को स्टैसिस नाम देते हैं । जीवाश्मों के लेखे-जोखे को यदि सारांश रूप में पेश किया जाए, तो यह दो बातों की ओर एकदम साफ इशारा करते हैं :

1. नस्लों में बदलाव आने वाले प्राणियों की खोज अभी तक नहीं की गई है।

2. ज़्यादातर प्रजातियों में व्यवहारिक रूप से बदलाव नहीं आते। (स्टैसिस)

निम्नलिखित तालिकाएं जीवाश्म वैज्ञानिकों के उन कथनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं जो उन्होंने जीवाश्मों के लेखे- जोखे के बारे में कहे हैं :

''..... एक बात जो यह (जीवाश्मों का प्रमाण) दर्शाता है.... कि ज़्यादातर प्रजातियों में बदलाव नहीं आता..... प्रजातियां ऐसी ही रहती हैं जैसी हैं..... अगर उनमें बदलाव नहीं आता, तो यह विकास नहीं कहलाता, अतः आप उसके बारे में बात न करें'' - स्टीफेन जे.गाउल्ड।

''जीवाश्म वैज्ञानिक वातावरण के अनुकूल बनाने वाले धीरे-धीरे होने वाले बदलाव की कल्पना से लिपटे रहे, यहां तक कि इसके विरोध में मिलने वाले स्पष्ट प्रमाणों का सामना करने के बावजूद भी..... जीवाश्म वैज्ञानिकों का 'व्यवसायिक भेद',जैसा कि गाउल्ड ने बाद में इसके बारे में कहा'' - नील्स एल्डरिज्।

''इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जीवाश्म वैज्ञानिक एक लम्बे अर्से तक विकासवाद की धारणा से कतराते रहे । ऐसा कभी होगा, ऐसा लगता नहीं है'' - नील्स एल्डरिज्।

''परन्तु किसी ने भी प्राणियों में ऐसा नहीं पाया है.... और इस दृढ़ विश्वास की स्थिति बहुत सारे वैज्ञानिकों में दिनों दिन बढ़ती जा रही है कि इस तरह का परिवर्तन लाने वाले नस्लें कभी पायी ही नहीं गई थीं'' - नील्स एल्डरिज्।

''यह तो अब निश्चित है कि स्टैसिस ..... अस्तित्व में ..... अधिकांशतः जीवाश्मों की प्रजातियों के कई मामलों में .....ठीक उसी के समान यह धारणा भी विवाद के परे लगती है कि प्रजातिवाद (सम्पूर्ण जैव विकास)सामान्यतः बड़ी तेज़ी के साथ होता है ..... कि यह प्रक्रिया जीवाश्मों के लेखे -जोखे में वर्णित निर्धारित लक्ष्यों से नीचे के स्तर की बात है'' - टी. एस. कैम्प।

''यदि जीवाश्मों का लेखा-जोखा विकास के बारे में कोई भी एक तथ्य उजागर कर सकता है, तो वह यह है कि एक भी ऐसा उदाहरण नहीं पाया जाता! ..... ऐसा लगता है कि इन तथ्यों को मिलाने की वजह ही स्वयं इनके नष्ट हो जाने की वजह है और इसके बारे में बात करना छोड़ देना चाहिए ....'' - टी.एस. कैम्प।

''जीवाश्म वैज्ञानिकों की आंखें इस संसार में सबसे, अधिक क्षमता वाली होती हैं। यदि हम जीवाश्मों को नहीं खोज सके हैं, तो कभी-कभी आपको यह मान लेना है कि वे वहां निश्चित रूप से नहीं रहे होंगे'' - विल्टी हैगाडॉर्न, सम्हर्स्ट कॉलेज।

इस स्थिति में हम यह पूछने के लिए मजबूर हैं, यदि अरबों जीवाश्मों में से यदि कुछ जीवाश्मों ने ऐसी सन्देह के घेरे में लाने वाली बदलती हुई नस्लों को जन्म दिया है, तो क्या परीक्षण के तौर पर निर्मित प्रमाण यह नहीं बताते कि सम्पूर्ण जैव विकास का सिद्धान्त एक दोषपूर्ण सिद्धान्त है ? क्या हमारे कमज़ोर मामले वाली फाइल इस मामले को आसानी से सुलझा सकेगी ?

गाउल्ड और एल्डरिज जैसे प्राणी शास्त्रियों के अनुसार तो नहीं। हालांकि वे बदलाव वाली नस्लों के लुप्त हो चुके जीवाश्मों की बात अपने मुंह से कहते तो आ रहे हैं, परन्तु उन्होंने अपने आपको बड़ी ही गरमजोशी के साथ डार्विन के तर्कों के आधार पर कही गई बात के हवाले कर दिया है कि सम्पूर्ण जीवन ऐसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम है जो किसी योजना के तहत नहीं है।

एल्डरिज और उनके साथी गाउल्ड ने बदलती हुई नस्लों वाले जीवाश्मों की कमी का जवाब एक नये सिद्धान्त को विकसित, करके दिया जिसे 'सन्तुलन की विरामास्थिति' (पंक्चुएटेड इक्विलिबिरआ) के नाम से जाना जाता है और जो डार्विन के तर्कों के आधार अर्थात् धीरे-धीरे विकास होने के सिद्धान्त को पूरी तरह से रवाना कर देता है।

उन्होंने तर्क देते हुए बताया कि छोटे-छोटे निर्जन भौगोलिक क्षेत्रों में बड़ी तेज़ी के साथ विकास की प्रक्रिया फलने-फूलने लगी थी, लेकिन जब वहां प्रजातियों की बड़ी,जनसंख्या दूसरे क्षेत्रों में पलायन करने लगीं और प्रजातियां वहां जब स्थायी तौर से रहने लगीं तो विकास की प्रक्रिया विलुप्त हो गयी। उनका सिद्धान्त इस बात

की भी घोषणा करता है कि एक प्रजाति से दूसरी प्रजातियों में तब्दील होने की लम्बी छलांग की घटना भी तेज़ी से घटी, जिसके कारण बदलती हुई नस्लों वाले जीवाश्म भी पाए गए होंगे। और इस तरह से, जीवाश्मों की लुप्त हो रही संयोजी कड़ियों के रहस्य का वर्णन भी किया जा सकेगा।

मज़े की बात तो यह है, एक नये किस्म के जीवन के स्वरूप के यकायक उत्पन्न होने का जो सिद्धान्त सन्तुलन की विरामा-स्थिति के सिद्धान्त के साथ मिलाकर पेश किया गया वह बिल्कुल जीवन के ''आश्चर्यजनक'' उद्भव के साथ मेल खाता हुआ है जिसे डार्विन ने अपने सिद्धान्त में नकार दिया था। डार्विन ने अपने आपको पूरी तरह से धीरे-धीरे विकास होने के सिद्धान्त के हवाले कर दिया था और उनकी दृष्टि में यकायक उत्पन्न होने वाली बात मात्र कल्पना बन कर रह गई थी।

तब भी, 'सन्तुलन की विरामास्थिति' का सिद्धान्त बहुत से वैज्ञानिकों के लिए प्रश्नकर्त्ता बन कर रह गया है। डेन्टन इसका विरोध इस तर्क के आधार पर करते हैं कि बदलती हुई नस्लों वाले जीवाश्म या तो दुर्लभ होने चाहिए या उनका अस्तित्व होना ही नहीं चाहिए :

''इस बात को सुझाव के तौर पर पेश करने के लिए कि ..... सम्भव है कि यहां तक कि नस्लों में बदलाव पैदा करने वाली लाखों प्रजातियां..... सारी असफल प्रजातियां थीं जो निर्जन स्थानों पर वास कर रही थीं और उसमें से बहुत कम प्रजातियां ऐसी थीं जो अद्भुत रूप से विकास की हद को पार कर रही थीं''।

बड़े दिलचस्प तौर से, ख़ास रचना का तथ्य और सन्तुलन की विरामास्थिति दोनों पहले से ही घोषणा करते हैं कि नयी किस्म के जीवन के स्वरूप अचानक से ही जीवाश्मों के लेखे जोखे में अपना स्थान बना सके होंगे। जैसा कि प्रकृतिवादी गाउल्ड और एल्डरिज इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि कोई ऐसी प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसे अभी भी ठीक ढंग से परिभाषित करना बाकी है, जो योग्यतम प्रजाति एवं जीवन के आरम्भ के बारे में ज़िम्मेदार ठहरता है।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कार्यरत विकासवादी विचारधारा को मानने वाले कॉनवे मॉरिस, ''जिन्हें अपने समय के प्रमुख जीवाश्म वैज्ञानिकों में से एक माना गया है'' अपने विचार रखते हुए कहते हैं,

''यह एक उद्देश्यहीन, दिशाहीन प्रक्रिया है, यदि इन बातों से परे हटकर सोचा जाए तो विकास की प्रक्रिया बड़े ही उम्दा नमूनों को दिखाती है और शायद वे नमूने किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी हों''।

उनकी पुस्तक 'लाइफ्स सॉल्यूशन' में मॉरिस जीवन का स्थायी कभी न बदलने वाला, जो ख़ाका है उसके बेहद दिलचस्प उदाहरण को सामने रखते हैं (जो हमें एक ही परिणाम पर पहुंचाने वाला है।) जो जीवन के प्रति इस भ्रम का खुलासा करता है कि जीवन अचानक ही उत्पन्न हुआ और विकसित होता चला गया। हालांकि वे सृष्टिकर्त्ता के होने में विश्वास नहीं करते, फिर भी मॉरिस राय देते हुए कहते हैं कि जीवन सिर्फ़ समय और किस्मत का मिला जुला उत्पाद तो हो ही नहीं सकता जैसा कि डार्विन ने अपने सिद्धान्त में कहा है। उनकी पुस्तक उल्लेख करती है कि :

''क्या विकास की अपनी कोई संरचना है, क्या कुल मिलाकर यह कोई नमूना या बनावट या शायद यह सिर्फ़ एक उद्देश्य है ? इस नज़रिये से तो जो पारम्परिक परिभाषाएं हैं वे बदल जाती हैं..... हमारा जीवन, दूसरे अन्य जीवनों की तरह, विकास की एक घटना है। लेकिन क्या यह सही है ? वास्तव में जो प्रमाण मिले हैं वे विपरीत दिशा की ओर इशारा करते हैं''।

इस हक़ीकत ने कि जो प्रमाण मिले हैं वे किसी बनावट और उद्देश्य की ओर इशारा करते हैं, डार्विन विचार धारा के समर्थकों जो इस बनावट और ख़ास रचना के पीछे छुपी विशिष्ट बौद्धिक क्षमता का बड़ी गरमजोशी के साथ विरोध करते हैं, उनके चारों ओर एक गहरी खाई सी खोद दी है। एक साफ सी, स्पष्ट सच्चाई तो यह है कि कुछ भी हो ..... डार्विन के दावे जीवाश्मों से मिले प्रमाणों की रोशनी में अपनी रवानगी की ओर कूच करते नज़र आते हैं।

नव डार्विनवाद का फैसला

डार्विन के विकासवाद को नव-डार्विनवाद (अध्याय 3 देखें) द्वारा दोहराना एक अच्छा अनुभव नहीं रहा है। प्रत्येक दशा में, बदलती हुई नस्लों वाले जिन जीवाश्मों के बारे में पहले से ही घोषणा की गई थी, उनकी कमी खटकती है और पूरी तरह से ऐसी बात लगती है जिसकी आशा भी नहीं की गई थी। परन्तु नव-डार्विनवाद को लेकर कुछ और मुश्किलें भी पेश आई हैं।

वर्ष 1966 में, बावन बेहतरीन गणितज्ञों और विकासवाद की विचारधारा से जुड़े जीव वैज्ञानिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी नव डार्विनवाद के द्वारा विकास की प्रक्रिया की विकास करने की क्षमता की जांच करने के लिए सम्पन्न हुई।

गणितज्ञों ने इस विषय को उठाया कि सम्पूर्ण जैव विकास की धारणा को गणित की संकल्पनाओं के द्वारा बचाया नहीं जा सकता और इस गोष्ठी में विश्व के कुछ महानतम डार्विनवादियों को नव-डार्विन वाद को बचाने के लिए भी आमंत्रित किया गया था।

यदि विकासवादी अपनी जगह सही थे तो कम्प्यूटर द्वारा तैयार किये गए मॉडलों को भी प्रक्रिया का पुनर्निर्माण करने में सक्षम होना चाहिए था। गणित की गणना के बावजूद भी विकासवादियों के विचार जब नहीं बदले तो गणितज्ञों ने नव-डार्विनवाद की प्रक्रिया को बराबर पुर्ननिर्मित करने के प्रयास किये जो कि हरेक कोशिश में असफल साबित हुए।

पेरिस विश्वविद्यालय के डॉ. मार्सल सट्ज़नबरगर नव-डार्विनवाद के अनुसार विकास की प्रक्रिया को गणित के कम्प्यूटर मॉडलों द्वारा वास्तविकता प्रदान करने की असफलता की जानकारी देते हुए कहते हैं :

''अतः..... नव-डार्विन वाद के अनुसार विकास के सिद्धान्त में एक बहुत बड़ी दूरी है, और हमें विश्वास है कि ..... जीव विज्ञान की वर्तमान परिकल्पनाओं को इसके साथ जोड़कर पुल नहीं बनाया जा सकता''।

शिकागो विश्वविद्यालय में पास्थितिकी विज्ञान और विकास के विभाग में कार्यरत् जैरी कॉयनी अपनी आवाज़ उन लोगों की आवाज़ में मिलाते हुए कहते हैं जिन्होंने नव-डार्विनवाद को ठुकरा दिया है :

''हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं..... आशा के विपरीत.... नव डार्विनवाद की विचार धारा के लिए एक छोटा सा प्रमाण मिलता है : जिन सिद्धान्तों पर इसकी बुनियाद टिकी है वे और इसको सहारा देने वाले प्रयोगों से प्राप्त जो प्रमाण मिले हैं वे कमज़ोर हैं।''

मनुष्य का अनोखापन

हमारे इस दौरे की जो गाइड हैं, वह दीवार पर मनुष्य के पूर्वजों के चित्रों की कड़ियों की स्लाइड को प्रदर्शित करती हैं, जो हमें इतिहास के बीते हुए युगों की ओर पीछे ले जाकर उस प्रागैतिहासिक बनमानुष की ओर ले जाती हैं जो अपने चारों पैरों पर झुककर चल रहे हैं। बहुत ही आत्मविश्वास के साथ, बड़े ही प्रभावशाली अन्दाज़ में वह डार्विन की इस विचारधारा को प्रस्तुत करती हैं कि हमारे साधारण पूर्वजों के प्राकृतिक रूप से विकास करने के द्वारा ही हमारा विकास हुआ है।

यह सिर्फ़ देखने मात्र की ही बात है या इसके जांचे-परखे गए प्रमाण भी मिले हैं कि इन जीवाश्मों का वास्तव में अस्तित्व है ? विशेषज्ञों ने इस बारे में क्या खोज की है ?

हम देख चुके हैं कि बदलती हुई नस्लों वाले ऐसे कोई भी जीवाश्म नहीं मिले हैं जिन पर विवाद न किया जा सके और जो किसी भी प्रजाति में सम्पूर्ण जैव विकास की व्यवस्था को दर्शाते हों, कुछ भी हो, बहुत से ऐसे विकासवादी हैं जो इस आत्मविश्वास से भरे हैं कि उन्होंने मनुष्य के पूर्वजों होमोनिड जीवाश्मों को खोज निकाला है, जैसे कि होमो-इरेक्टस और नीएन्डरथाल।

विश्व के प्रसिद्ध मानव जीवाश्म वैज्ञानिक रिचर्ड लीकी के अनुसार, तब भी मानव पूर्वजों के विकसित होने की घटनाओं की श्रृंखला की खोज बहुत ज़्यादा निराशाजनक एवं अधूरी रही है। टेलीविजन कमेन्ट्रेटर वॉल्टर क्रान्काइट के साथ हुए एक साक्षात्कार में लीकी कम शब्दों में इस बात को यूं बयान करते हैं :

''यदि वे मनुष्य की वंशावली का ख़ाका खींचने जा रहे हैं तो वे एक बहुत बड़े प्रश्नचिन्ह का खाका तैयार करने जा रहे हैं''।

विकासवादी इयॉन टैटरसाल (अमेरिकन म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री में मानव जैविकी और विकास के हॉल के संग्रहालय अध्यक्ष) अपनी पुस्तक 'द फॉसिल ट्रायल' में अचानक एवं असाधारण रूप से उत्पन्न होने वाली प्रजातियों के बारे में टिप्पणी लिखते हैं :

''कुछ ऐसा जो एकदम ..... भिन्न ..... यदि यह केवल, पूरी तरह से किस्मत की बात है तो, बहुत ही असाधारण घटना है जो प्रजातियों के उत्पन्न होने के साथ घटी है''।

विकासवादी विचारधारा के मानने वालों के लिए यह सबसे गहरे रहस्यों में से एक रहस्य है कि कितनी तेज़ी के साथ मनुष्य इस घटना के चलचित्र के पर्दे पर नज़र आने लगा और भाषा के ज़रिये से बात करने लगा ? मनुष्य की बोलने की क्षमता को देखकर तो विकासवादी विचारधारा के मानने वालों के मानो पांव ही उखड़ गए हैं।

मैपिंग ह्यूमन हिस्ट्री में विकासवादी विचारधारा को मानने वाले स्टीव ऑलसन भाषा के कौशल के अचानक से उत्पन्न हो जाने के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं :

''वास्तव में, भाषा की उत्पत्ति किसी अज्ञात स्थान से नहीं हुई है। विशेष रूप से आदिमानव का बोलना, वाक् इन्द्रियों और नाड़ी सम्बन्धी तंत्रिकाओं के यन्त्रनुमा प्रणाली का एक हिस्सा है। परन्तु यहीं से विश्व प्रसिद्ध समस्याएं पैदा होनी शुरु हो जाती हैं। वातावरण के अनुकूल अपने आपको बनाने के लिए विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप जो भी बदलाव आए हैं वे केवल वर्तमान में ही उपयोगी हैं, न कि अस्पष्ट रूप से बताए गए भविष्य में''।

डी एन ए का मेल न खाना

वे म्यूज़ियम जो यह दर्शाते हैं कि नीएण्डरथाल मानव हमारी वंशावली का एक हिस्सा है .....उन सारे म्यूज़ियमों को हम देख चुके हैं। दसियों सालों तक विकासवादी विचारधारा के मानने वालों को यह सोचना था कि नीएण्डरथाल मानव वनमानुषों और मनुष्यों के बीच की एक प्रमुख कड़ी है। कुछ भी हो, हाल ही में मिले डी एन ए प्रमाणों ने विकासवादी विचारधारा के मानने वालों की उम्मीदों पर पानी फेर दिया है। डॉ. फज़ले राना इस बात को उभारते हुए कहते हैं :

''नीएण्डरथाल और मनुष्य के डी एन ए के अलग-अलग हिस्सों के बीच जो अन्तर की स्थिति और औसत प्रतिशत है, वह यह संकेत करता है कि नीएण्डरथाल का विकास मनुष्यों में से नहीं हुआ था''।

दूसरे शब्दों में, डी एन ए की क्रमवार स्थिति यह दर्शाती है कि नीएण्डरथाल एक अलग प्रजाति थी, और यह तथ्य जो कुछ भी बहुत से जीवाश्म वैज्ञानिकों द्वारा पढ़ाया जा चुका है, उसका खण्डन करता है।

डी एन ए का माइटोकॉन्ड्रियल अध्ययन मानव जीवाश्म को लेकर तीन हैरतअंगेज़ क्रमिक विकासों को प्रकट करता है।

1. इस घटनाक्रम में जब मनुष्य प्रगट हुआ तो विकास के कोई चिह्न नहीं दिखायी दिए थे।

विकासवादी विचार धारा को मानने वाले स्टीव ऑलसन लिखते हैं,

''आधुनिक मानव के प्रगट होने के साथ ही, हमारी प्रजातियों में जो बड़े पैमाने पर विकास हो रहा था, वह करीब-करीब बन्द हो गया''।

2. दूसरी प्रजातियों की तुलना में मनुष्य का डी एन ए उच्च कोटि पर स्थायी था, उसमें बहुत ज़्यादा परिवर्तन की गुज़ाइश नहीं थी।

ऑलसन टिप्पणी करते हैं,

''आदि से अन्त तक का जो, सबसे स्थायी जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, उसमें सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण विचारधारा यह है कि हमने अपनी हैरतअंगेज़ समानताओं की पहचान कर ली है''।

3. आधुनिक मानव अपने उत्पन्न होने के साथ ही दूसरे स्थानों की ओर चला गया।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में मानव जीवाश्म विज्ञान शास्त्री मारटा लर्ह इस बारे में वर्णन करते हैं;

''घटनाओं के घटित होने के कालक्रम और जीन सम्बन्धी जो ढेरों-ढेर आंकड़े मौजूद हैं, वे इस बात की ओर इशारा करते हैं कि सारे आधुनिक मानवों की उत्पत्ति एक ही जगह से हुई है.....''।

4. हम सब एक ही मनुष्य की सन्तान है।

ऑलसन की कलम इस बात की गवाही देती है;

''पहली बार जब मैंने इस कथन को सुना तो मुझे लगा कि यह तो बहुत ज़्यादा शक पैदा करने वाली बात है कि सभी 6 अरब लोग जो इस उपग्रह पर रह रहे हैं कि किसी एक ही पूर्वज की सन्तान हैं ? तब भी यह नतीजा बहुत से अद्भुत वैज्ञानिक नतीजों में से एक ही तो है जिनको न केवल सच माना जाना चाहिए, बल्कि जिनका सच होना ही एक सच्चाई है''।

मनुष्य की ख़ासियत के बारे में जो प्रमाण मौजूद हैं उनको सारांश रूप में पेश करते समय, आइए हम विश्व के प्रमुख जीवाश्म वैज्ञानिक इयान टैटरसाल को सुनें कि वे जीवाश्मों के लेखे-जोखे के अनुसार मनुष्य के अनोखेपन पर ज़ोर देते हुए क्या कहते हैं :

''सबसे ज़्यादा प्रभावित करने वाला.....होमो सैपियन्स, जैसे ही पृथ्वी पर अस्तित्व में आया, एकदम से एक ख़ास हस्ती बन गया, और इसको अनेकों बार बुद्धि एवं एक बड़े मस्तिष्क वाले होमोनिड जीवाश्म जो कि इसके साथ ही अस्तित्व में आया, के साथ मिलाकर बनाए जाने के बावजूद भी, इसको सभी प्रजातियों में सबसे अधिक प्रशंसा मिलनी ही चाहिए''।

हमारे इस भ्रमण को, जो गाइड हैं, वह अब मानव के पूर्वजों के स्लाइड का प्रदर्शन बन्द कर देती हैं, और डार्विन के सिद्धान्त के जो प्रमाण बीते 150 वर्षों में इकट्ठे किये गए हैं, उनको दोहराना शुरु कर देती हैं। प्रजातियों में, निरीक्षण के बाद पायी जाने वाली विभिन्नताओं के उदाहरण वह बड़े ही गर्व के साथ देने लगती हैं; जैसे कि डार्विन ने गाने वाली जिस छोटी चिड़िया (चटक) के बारे में बताया उसका उदाहरण, और तब वह सम्पूर्ण जैव विकास के उदाहरण की ओर संकेत करती हैं जैसे कि आर्कियोप्टेरिक्स।

माइटोकान्ड्रियल डी एन ए जो कि कोशिका के भीतर निहित होता है वह कोशिका के केन्द्र का भाग नहीं होता, और मिओसिस की क्रिया से होकर नहीं गुज़रता है। अतः परिणामस्वरूप यह माता से बच्चे में इसी तरह सही सलामत आगे बढ़कर पहुँच जाता है, इस तरह से जनन विज्ञान शास्त्रियों को एक सशक्त मार्ग द्वारा पूर्वज होने और एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने का ख़ाका खींचने के महत्वपूर्ण संकतों तक पहुंचाता है।

विज्ञान या मात्र कल्पना ?

और जैसे कि हम ठहरे हुए हैं और इस बारे में विचार कर रहे हैं कि मिले हुए प्रमाण डार्विन के विकासवाद के बारे में हमें क्या बताते हैं, आइए, हम अणु जीव वैज्ञानिक माइकल डेन्टन जैसे विशेषज्ञों की राय सुनें, जो डार्विन के विकासवाद के 150 सालों को सारांश रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं,

''इस ..... कल्पना ने चारों ओर ग़लतफ़हमी फैला दी है कि विकासवाद का सिद्धान्त ही सब कुछ है लेकिन आज से सौ साल पहले जो कुछ साबित किया गया है और इससे सम्बन्धित जो भी खोजें की गई हैं .... डार्विन के विचारों को कभी न प्रगति करने वाले प्रमाणों को हम तक पहुंचाती हैं। सच्चाई से ज़्यादा कुछ भी सच नहीं हो सकता है''।

हक़ीकत तो यह है कि आज से सौ साल पहले जो प्रमाण जुटाए गए थे, वे ही इस मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए पर्याप्त हैं कि यहां तक कि डार्विन स्वयं अपने विचारों को वैध साबित करने के प्रयास में बहुत सी ग़लतफ़हमियों को उत्पन्न करते आए हैं, और उनके द्वारा दिए गए सिद्धान्त का केवल एक ही पहलू ऐसा है जिसे बीती शताब्दी से भी पहले से केवल एक ही समर्थन मिलता है, सम्पूर्ण जैव विकास की प्रक्रिया में यह कहां उपयोगी साबित होता है । उनका साधारण सिद्धान्त.....अभी भी, वैसा ही है जैसा कि डार्विन के समयकाल में था, कि पूरी तरह से अनुमानों पर आधारित यह एक बहुत उच्च स्तर की ऐसी परिकल्पना है जिसे स्पष्ट तथ्यों या प्रमाणों का कोई भी समर्थन नहीं मिला है''।

दूसरे शब्दों में बिल्लियों, कुत्तों, पतंगों, गाने वाले छोटी चटक चिड़ियों और दूसरी प्रजातियाँ समय-समय पर अपने जीन गुणों के अनुसार अपने आकार, रंग और स्वभाव में बदलाव ला सकती हैं परन्तु ऐसा कोई भी विवादास्पद प्रमाण कभी नहीं पाया गया है जो आने वाले समय में यह इशारा करे कि एक प्रजाति विकसित होकर दूसरी प्रजाति में बदल जाती है।

जैव रसायन के प्रोफेसर, माइकल बीही सूक्ष्म जैव विकास को साबित किये गए तथ्य की मान्यता देते हैं लेकिन साथ ही डार्विन के सम्पूर्ण जैव विकास सम्बन्धी सिद्धान्त के विरोध में पेश किये गए ज़बरदस्त प्रमाणों को भी स्वीकार करते हुए कहते हैं :

''लेकिन यह बात तो सम्पूर्ण जैव विकास के स्तर पर पहुंचने की बात है ....एक ऐसी लम्बी छलांग .....परिणाम स्वरूप यह सिद्धान्त पलायनवाद को जन्म देता है। बहुत से लोगों ने डार्विन की बातों का अनुसरण इस इरादे से किया कि जो बड़े बड़े परिवर्तन हैं वे लम्बे समय के अन्तराल के साथ बड़े ही विश्वसनीय तरीके से छोटे-छोटे चरणों में होते होते बन्द हो जाएंगे। कुछ भी हो, इस स्थिति का समर्थन करने वाले, लोगों को इसका कायल बनाने वाले प्रमाण, आने वाले समय में कभी नहीं उपलब्ध हो पाएंगे''।

डार्विन स्वयं इस बात को खुले दिल से मान लेते हैं कि उनका सिद्धान्त प्रमाणों के आधार पर साबित किया भी जा सकता है और साबित नहीं भी किया जा सकता है। लेकिन हक़ीकत में काल्पनिक क्या है..... क्रमिक विकास या ख़ास तरीके से की गई रचना ? यहां तक कि बहुत से धार्मिक प्रकृतिवादी भी इसी प्रश्न को पूछ रहे हैं। ऑक्सफोर्ड के डॉ. टी.एस. कैम्प विकासवादी विचारधारा को मानने वालों की कुण्ठा को सारांश रूप में पेश करते हुए कहते हैं:

''विकासवाद की एक भी सत्य घटना .....प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अयोग्य ठहराने वाली मंज़ूरी के सामने पूरे ब्योरे के साथ कभी भी बयान नहीं की गई''।

ब्रिटिश जिओलॉजिकल एसोसिएशन के अध्यक्ष डॉ. डी.वी. एजर घोषणा करते हुए कहते हैं:

''....अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने विकासवाद से जुड़ी जो भी कहानियां सुनी थीं, लगभग वे सभी झूठी साबित की जा चुकी हैं .....''।

'एवॉल्यूशन : अ थ्योरी इन क्राइसिस' में डेन्टन टिप्पणी करते हुए कहते हैं:

''कोई तो रहा होगा जिसने आशा की होगी कि एक ऐसा सिद्धान्त .... जिसने आखिरकार संसार के नियमों को बदल डाला ..... एक कल्पना ....से ज़्यादा कुछ नहीं रहा होगा''।

काल्पनिक ? एक ऐसा वैज्ञानिक सिद्धान्त जिसने ''संसार के नियमों को बदल डाला'' है, कैसे काल्पनिक हो सकता है ? आज हमारे संसार विज्ञान के प्रति लोगों की बहुत गहरी मान्यताएं हैं। विज्ञान के ही द्वारा हम अपनी सृष्टि के बहुत सारे रहस्यों और इसके काम करने के तरीकों के बारे में जान पाए हैं। आकाशगंगाओं से लेकर मानव शरीर तक की सारी क्रियाएं कैसे सुचारु रूप से काम करती हैं, इसके सम्बन्धित तथ्यों को लेकर, अपने इस उद्देश्य की पूर्ति एवं इसके प्रति झुकाव होने के कारण हमारी दृष्टि वैज्ञानिकों के फ़ैसले पर टिकी होती है।

कुछ भी हो, हम यह जानते हैं कि वैज्ञानिक भी मनुष्य होते हैं, और कभी-कभी उनकी वैज्ञानिक जांच-पड़ताल पहले की गई कल्पनाओं की धारणाओं और दृढ़ विश्वास पर आधारित होती है। एल्डरिज इस बारे में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं:

''वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे अपने सिद्धान्तों को हल्के तौर से पेश करें, सभी मिले अवसरों का भरपूरी से लाभ उठाकर जांच पड़ताल करें ....उन्हें झूठा भी साबित वे ही करें ..... परन्तु एक भी ऐसा वैज्ञानिक नहीं है जिसने ऐसा बर्ताव किया हो कि स्वयं को सन्देह के घेरे में ला खड़ा कर लोगों की निन्दा का सामना किया हो। वैज्ञानिक भी प्रकृति के नियमानुसार ..... सामान्य मनुष्य हैं जो बड़ी ही धीरता के साथ अपने विचारों, अपने द्वारा पेश किये गए ख़ास सिद्धान्तों पर जमे रहते हैं। यह बात तो किसी दूसरे व्यक्ति पर निर्भर करती है कि वह आपको ग़लत साबित करे''।

डार्विन द्वारा प्रतिपादित धीरे-धीरे विकसित होने का सिद्धान्त प्रमाणों की रोशनी में झूठा दिखायी पड़ने लगता है, परन्तु लेकिन किसी वैध वैकल्पिक सिद्धान्त जिसे प्रकृतिवादी स्वीकार कर सकें, के अभाव में, यह जीव-विज्ञान के संसार में अभी भी प्रमुख स्थान ग्रहण किये हुए है।

तब भी बहुत सारे वैज्ञानिकों की प्रतिक्रिया यह है कि उन्होंने डार्विन के सम्पूर्ण जैव विकास के विरोध में मिले प्रमाणों को देखते हुए इसे एक बहुत समय से चली आ रही कल्पना मानकर इसको मान्यता देने से इन्कार कर दिया है। नतीजतन डेन्टन अपनी किताब 'एवॉल्यूशन : अ थ्योरी इन क्राइसिस' का अन्त इस फैसले की घोषणा के साथ करते हैं:

''आखिरकार डार्विन का विकासवाद का सिद्धान्त या तो अस्तित्वहीन हो जाता है और या बीसवीं शताब्दी की, खगोल शास्त्र से जुड़ी एक बड़ी भारी परिकल्पना से ज़्यादा कुछ नहीं माना जा सकता है''।

इससे पहले कि हम विकास के आरम्भिक दौर को दर्शाने वाले और बहुत ही शानदार ढंग से बने ब्रिटिश म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री में बने डार्विन केन्द्र के अपने इस काल्पनिक दौरे के अन्तिम चरण में पहुंचें, आइए हम अपना ध्यान यहां के भूतपूर्व और वरिष्ठ जीवाश्म वैज्ञानिक डॉ. कॉलिन पैटरसन की ओर लगाएं कि डार्विन के विकासवाद पर उनका नज़रिया क्या कहता है :

पैटरसन ने 100 से भी अधिक घोषणाएं विकासवाद के बारे में कीं और म्यूज़ियम में 30 से भी अधिक सालों के कार्यकाल में इस विषय के ऊपर भाषण देने वाले सबसे ज़्यादा प्रमुख व्यक्ति वही रहे। हालांकि पैटरसन प्रकृतिवाद में ही विश्वास करने वाले बने रहे, फिर भी 1980 के आरम्भिक दौर में उन्होंने अपने एक भाषण के दौरान डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के प्रति अपने कम हो रहे विश्वास को लोगों के बीच स्वीकार किया।

''पिछले 18 महीनों से मैं अथवा ये कहूं कि मैं ग़ैर-विकासवादी सिद्धान्तों ..... विचारों .....को ठुकराता चला आ रहा हूं.....मुझे लगता है कि मैं 20 वर्षों से भी अधिक समय से इस विषय पर काम करता चला आ रहा था, और मुझे एक भी बात इसके बारे में ऐसी पता नहीं चल सकी जिसका मुझे भली-भांति ज्ञान हो''।

''यह एक सदमा सा लगने वाली बात है कि कोई व्यक्ति इतने लम्बे अर्से तक भटकाव की स्थिति का सामना करता रहा हो..... मैंने बहुत से वर्गों और भिन्न-भिन्न लोगों के सामने इस साधारण से प्रश्न को उठाने की कोशिश की है: ''क्या आप मुझे विकासवाद के बारे में जो कुछ भी जानते हों, बता सकते हैं ? कोई भी एक बात..... जो हक़ीकत हो ? .....मैंने म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री के भूगर्भ शास्त्रियों जो कि फील्ड वर्क करने वाले स्टाफ में आते हैं उनके सामने भी यह प्रश्न रखने की कोशिश की और उनसे मुझे केवल एक ही जवाब मिला और वह था उनकी ख़ामोशी''।

''मैंने शिकागो के विश्वविद्यालय में एवॉल्यूशनरी मोरफोलॉजी सेमिनार के सदस्यों के सामने भी इस प्रश्न को रखने की कोशिश की, जो कि विकासवादी विचारधारा के मानने वालों की एक बहुत प्रतिष्ठित इकाई मानी जाती है, और जवाब में मुझे जो कुछ मिला वह उनकी ख़ामोशी थी..... और अचानक से उनमें से एक व्यक्ति बोला..... ''मैं इसके बारे में एक बात जानता हूं..... कि इसे दसवीं कक्षा के बच्चों को नहीं पढ़ाया जाना चाहिए''।

डार्विन केन्द्र का हमारा यह काल्पनिक दौरा अब अपने नतीजे पर पहुंच चुका है। हमें मालूम है कि हमारे पीछे उत्सुक चेहरों का अगला समूह लाइन बनाकर इस नये भवन जो कि चार्ल्स डार्विन को समर्पित है, का दौरा करने को तैयार बैठा है। दौरे की गाइड मुस्कराती हुई इस उत्सुक समूह को पीछे घूमकर जीवाश्मों की कतारों वाले हॉलनुमा कक्ष की ओर उनके पीछे आने को कह रही हैं।

हम अपने 'कमज़ोर मामले वाली फाइल' को अब सारांश रूप में पेश करने जा रहे हैं और निम्नलिखित मुद्दों पर अपना निर्णय सुनाने को तैयार बैठे हैं :

आप क्या सोचते हैं, इनमें से काल्पनिक क्या है : एक ख़ास रचना या डार्विन द्वारा घोषित विकासवाद ?

आपका क्या फ़ैसला है ?

अध्याय 5 में
हम इस बड़े नाटक,
जिसे हम जीवन कहते हैं,
में मनुष्य की क्या भूमिका है,
इस पर नज़र डालेंगे।
क्या इस विशाल सृष्टि में हम
सिर्फ़ खिलाड़ी भर हैं या
हम मुख्य भूमिका अभिनीत कर रहे हैं ?
यदि जीवन का
कोई अन्तिम उद्देश्य निर्धारित है.....
तो क्या हम उसे खोज सकते हैं ?